थियासोफ़ी (ब्रह्मज्ञान)

की

प्रथम पुस्तक

जो विशेष कर

ई० उड साहिब की गाइड टुथियासोफ़ी का सार है

१ थियासोफ़िकल समाज	४ मरण
२ थियासोफ़ी अर्थात् ब्रह्मज्ञान	५ पुनर्जन्म
३ मनुष्य	६ कर्म

७ मनुष्य का भविष्य

लेखक

रायबहादुर पंडा बैजनाथ बी० ए०,

एक्सट्रा एसिस्टेंट कमिश्नर मध्यप्रदेश

१९०९

मिलने का स्थान

थियासोफ़िकल पब्लिशिंग सोसायटी

बनारस

Printed by Panchkori Mitra at the Indian Press, Allahabad.

थियासाफी (ब्रह्मज्ञान)

की

प्रथम पुस्तक

१—थियासोफिकल समाज

इस समाज की स्थापना श्रीमती मेडम एच-पी-ब्लेवेटस्की द्वारा हुई है। पश्चिमीय देशों में शिक्षित लोगों की श्रद्धा धर्म पर से प्रायः उठ चली थी; वे लोग विचारने लगे थे कि मनुष्य-जीव के अमर होने का और स्थूल जगत् के सिवाय और कोई जगत् के होने का कोई आधार नहीं है। कोई २ विचारने लगे थे कि ये बातें केवल मिथ्या कल्पना ही हैं। ऐसी अवस्था में इन्होंने प्रगट किया कि आत्मज्ञान और दूसरे लोकों का हाल प्रत्येक मनुष्य अपने निज अनुभव द्वारा भी जान सकता है। इनका जन्म सन् १८३१ ई० में हुआ था और बाल्यावस्था से ही इनमें

चमत्कारिक शक्तियां और ज्ञान प्राप्ति की भारी तृषा प्रगट होने लगी थीं। १७ वर्ष की वय में इन्होंने घर का त्यागकर ज्ञान के शोध में सब प्रकार के दुःख और विपत्ति उठाकर, एक बड़े महात्मा ऋषि से ज्ञान प्राप्त किया। उनकी तथा दूसरे महात्माओं की प्रेरणा से इन्होंने यह समाज स्थापित कर, जो ज्ञान आपने सीखा था, उसे जगत् के हितार्थ प्रगट किया और दो बड़े ग्रंथ लिखे।

सन् १८७४ ई० में ये अमेरिका देश के युनाइटेड स्टेट्स में प्रवास कर रहीं थीं तब इनकी भेंट कर्नल आल्काट साहिब से हुई। ये प्रसिद्ध वकील और समाचार पत्रों के लेखक थे। वरमान्ट के एक स्थान में प्रेतावाहन और प्रेतों के स्थूल रूप से प्रगट होने के हाल की जांचकर समाचार पत्रों में लिखने के लिये ये आल्काट साहिब न्यूयार्क नगर से आये थे। यहां पर उनकी मेडेम ब्लैवेटस्की से भेंट हुई और दोनों में परिचय होगया। इन दोनों ने मिलकर इस समाज की स्थापना १७ नवम्बर १८७५ ई० के दिन

की। सन् १८७९ ई० में समाज का प्रधान स्थान न्यूयार्क से बंबई उठ आया और पीछे से मद्रास में आया। मेडेमब्लेवेटस्की का देहांत सन् १८९१ ई० में हुआ और कर्नल आल्काट सन् १९०७ में परलोक सिधारे।

इस समाज की स्थापना करने का उद्देश्य यह है कि संसार में उस आत्मज्ञान का प्रकाश होवे जिसे आजकल अंगरेज़ी भाषा में थियासोफ़ी अथवा ब्रह्मज्ञान कहते हैं। इन दो स्थापकों के पीछे उन्हें सहायता और ज्ञान देते हुए, वे बड़े महात्मा लोग हैं जो मेडेम ब्लेवेटस्की को मिले थे। ये महात्मा लोग केवल मनुष्य जाति के उपकारार्थ ही चेष्टा किया करते हैं। जो कोई इस समाज में आने की इच्छा करे उसके लिये आवश्यक है कि वह दूसरे लोगों से, उनके दूसरे धर्मावलम्बी या दूसरी जाति के होनेके कारण, घृणा न करे। यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी सभासद् को थियासोफी नामी ब्रह्मविद्या की कोई भी बात मानना पड़े या अपना धर्म या मत त्यागना

पड़े । सर्व मनुष्य जाति एक है, अलग नहीं है, यही विचार सब धर्मविद्या की जड़ है । इस तत्त्व के बिना सब केवल वृथा वाद है । मनुष्य जाति की उन्नति इसी बात के अधिक और अधिक स्पष्टतर समझने से होती है । विशेष ज्ञान प्राप्ति से भी यही बात और विशेष स्पष्ट खुलती है । यह भी मालूम पड़ जाता है कि नाना देश और नाना काल में मनुष्य जाति की अलग २ प्रकृति और अवस्था भेद के कारण बाह्य कर्म-कांड में भेद पड़ेगा परन्तु असल सार सब में एक होगा । शास्त्र की खोज से हमको यह भी मालूम होजाता है कि सर्व मनुष्य हर एक अपने शरीर और विचार और इच्छाएं एक दूसरे से बदलते हैं । इस का अर्थ यह नहीं है कि धर्म और जाति भेद बदल दिये जावें । परन्तु हमको याद रखना चाहिए कि हम सब की उन्नति हो रही है और हमारी उन्नति के अनुसार हमें सहारे की आवश्यकता पड़ती है । यह सहारा, समाज और धर्म के नियमों से हर किसी को उसकी आवश्यकता अनुसार मिलता है । इस

थियासोफिकल समाज में सब धर्म वाले लोग हैं और वे एक दूसरे से घृणा द्वेष न कर सब भ्रातृवत् बर्ताव करते हैं । एक मेम्बर दूसरे के विश्वास को बदलने की चेष्टा नहीं करता । किसी को एक और किसी को दूसरा धर्म अच्छा मालूम पड़ता है । सब सत्य को सबसे बढ़कर मानते हैं । सब मानते हैं कि एक स्थान को जानेके लिये कई मार्ग होते हैं ।

इस प्रकार थियासोफिकल समाज द्वारा लोगों में मेल बढ़ाने की चेष्टा होती है । मनुष्य जाति की आत्मा के एकत्व का बाह्य लक्षण मेल ही है । इस प्रकार इस समाज के द्वारा ब्रह्मज्ञान का अर्थात् ईश्वर और जीव के विषय में अपरोक्ष ज्ञान का द्वार खुलता है । यह द्वार घृणा, द्वेष, पक्षपात, स्वार्थता, इत्यादि दुर्गुणों के नाश हुए बिना नहीं खुल सकता । इस समाज के ३ उद्देश्य ये हैंः—

१—बिना जाति, वर्ण, या देशादि के भेद के, सर्व मनुष्य जाति में भ्रातृभाव उत्पन्न करने की चेष्टा करना और उसकी जड़ जमाना; (इसका अर्थ कुछ

सबके साथ खाने पीने का नहीं है परन्तु मन से सबके साथ भ्रातृवत् बर्ताव करने का है)

२—सर्व धर्म शास्त्र और दर्शन की, एक दूसरे से तुलना करके, अभ्यास करने के लिये उत्तेजना देना और—

३—प्रकृति और मनुष्य की गुप्त शक्तियों की जाँच कर खोज करना।

२—थियासोफ़ी अर्थात् ब्रह्मज्ञान।

हिन्दू धर्मशास्त्र में लिखा है कि पूर्वकाल में ऋषि लोग योग बल द्वारा सिद्धियां प्राप्त कर दिव्य दृष्टि से सर्व तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेते थे। यह भी पुराणों में लिखा है कि उन में से कोई २ अब भी हिमालय पर्वत में बैठे तप कर रहे हैं और जब समय आवेगा तब वे धर्म का प्रचार करेंगे। जो २ योगी सिद्धि को प्राप्त होते हैं वे इस ज्ञान की जाँच स्वयं कर लेते हैं। जब आगे के युगों में हमारी उन्नति होवेगी तब हम लोग भी उस ज्ञान की जाँच कर सकेंगे। परन्तु, यदि अभी हम अपनी उन्नति करने की चेष्टा करें

तो वह उन्नति बहुत शीघ्र होवेगी । ये हिमालय पर्वत-वासी ऋषि महात्मा कोई २ तो पूर्ण सिद्धियों का प्राप्त हो चुके हैं और समय २ पर मनुष्यों में जहाँ कहीं आवश्यकता पड़ती है, जनम लेकर धर्म की वृद्धि करते हैं। कोई २ महात्मा जगत् के और २ देशों में भी हैं और इन सबका एकही उद्देश्य रहता है । जगत् के बड़े २ धर्मों के तथा तत्त्व ज्ञान और सिद्धान्तों के स्थापक येही महात्मा ऋषि या इनके चेले होते हैं । इनका अर्थ यह रहता है कि मनुष्य धर्मज्ञान तथा तत्त्वज्ञान सीखकर बिना व्यर्थ कष्ट और दुःख उठाये उन्नति को शीघ्र प्राप्त हो । यदि ये ऐसे प्रयत्न न करें तो मनुष्यजाति की उन्नति होवेगी तो सही, परन्तु बहुत दीर्घकाल में और बड़े कष्ट के साथ। इसलिये जो धर्म ये महात्मा ऋषि लोग हम को सिखाते हैं उसे पूर्व में तो हमें आप्तवाक्य या निर्दिष्ट*

* वेदवाक्य को आप्तवाक्य कहते हैं । जब किसी मत को बिना समझे मान लेते हैं तब वह निर्दिष्ट मत कहलाता है । अंगरेज़ी शब्द dogma है ।

मत के समान मान लेना पड़ता है परन्तु जैसी २ हमारी बुद्धि बढ़ती जाती है वैसी २ उस आप्तवाक्य की जाँच हम कर सकते हैं और उसकी सत्यता हमको मालूम पड़ती जाती है। सब बड़े २ धर्मों में एकही सार रहता है परन्तु देश, काल, समाज, अवस्था आदि के भेद से बाह्य क्रिया में भेद रहता है। जैसी २ उन्नति होती जाती है वैसा २ इन बाह्य क्रियाओं में भेद पड़ता जाता है। सब धर्मों में एक बाह्य ज्ञान सर्वसाधारणार्थ और एक गुह्य ज्ञान उन्नति प्राप्त जीवों के लिये रहता है। क्योंकि मनुष्य जाति को धीरे २ यथासाध्य अधिक और अधिक ज्ञान सिखाने का अभीष्ट इन ऋषि महात्माओं का है। इस ज्ञान से मालूम पड़ता है कि मनुष्य का जीव अमर है और बारम्बार जन्म मरण को प्राप्त होकर नये २ अनुभवों को ग्रहण करता है। प्रत्येक अनुभव से नया ज्ञान मिलने के कारण उसे लाभ पहुँचता है। मनुष्य योनि से ऊपर देवादिकों की योनियाँ हैं। उससे उतरके पशु, वनस्पति, धातु और नीचे की कई श्रेणियां हैं।

यह जगत् कल्प के आरंभ में त्रिगुणात्मक ईश्वर से निकलकर फिर कल्प के अंत में उसी में लय हो जाता है। फिर नये कल्प के आरंभ में यही सृष्टि ईश्वर से फिर बाहर निकलती है। प्रत्येक कल्प में उन्नति होती जाती है। प्रलय काल में सब सृष्टि अपनी उन्नति सहित ईश्वर में बीज रूप से रहती है। और मन्वन्तर के आरंभ में फिर प्रगट होकर आगे बढ़ती है। प्रवृत्ति काल में चेतना माया में लय होती जाती है अर्थात् सब प्रकार की वासनाओं का स्वाद और अनुभव ग्रहण करती है। परन्तु निवृत्ति काल में माया का त्याग होता है। जगत् में प्रकृति पुरुष, माया और आत्मा, सर्वत्र एकत्र हैं; एकके विना दूसरा कहीं नहीं मिलता; केवल परब्रह्म इनसे परे है। सब रूपों में आत्मा एकही है। अलग २ रूप के कारण आत्मा भ्रम से अलग २ भासता है। इस सर्व जगत् का अर्थ यही है कि हम लोग उन्नति को प्राप्त होकर ब्रह्मत्व को प्राप्त होवें। जैसे कि समुद्र की

प्रत्येक वृन्द की उन्नति होकर समुद्र की चेतना प्रत्येक को भासने लगे।

३—मनुष्य।

अपने शास्त्रों में १४ लोकों का वर्णन है। उनमें से ७ लोक अच्छे लोगों के लिये हैं और ७ नीचे हैं। इस लोक में प्रकृति की तीन अवस्था हम को मालूम हैं, घन जैसे लकड़ी, तरल या प्रवाही जैसे पानी, और वायु। वायु से ऊपर चार अवस्था और हैं। चौथी को अंग्रेज़ी भाषा में ईथर कहते हैं। ईथर पदार्थ में तरंग उठने से गर्मी, प्रकाश, बिजली, आदि विकार दृश्यमान होते हैं। ईथर में वज़न नहीं होता। सूर्य मंडल भर में और उससे बाहर भी ईथर भरा है ऐसा मानते हैं। क्योंकि सूर्य मंडल से बाहर के भी तारे दिखते हैं। ईथर से ऊपर तीन विकार और हैं जिन का ज्ञान अभी तक हमको नहीं हुआ। इन तीनों को भी ईथर विशेष कहेंगे। यह वर्णन इस स्थूल जगत् का हुआ। इससे सूक्ष्मतर और इसी स्थूल जगत् के भीतर

बाहर भराहुआ दूसरा लोक है जिसे एस्ट्रललोक या भुवर्लोक या यमलोक, और उसके विशेष खंडों को प्रेतलोक, पितृलोक कहते हैं। इससे आगे तीसरा मानसिक लोक है जो हमारा स्वर्ग लोक है। इससे आगे बुद्धिलोक और उससे सूक्ष्मतर आत्मलोक है। मनुष्य को हाल में इन्हीं पाँच लोकों से काम है। जो योगी पुरुष हैं वे इन लोकों का ज्ञान इसी लोक में रहकर प्राप्त कर लेते हैं। हम सब धीरे २ उन्नति पाकर प्रथम एस्ट्रल लोक यानी भुवर् या यमलोक का, फिर स्वर्ग का, फिर उसके आगे का हाल जान लेवेंगे। परन्तु इस के लिये बहुत काल लगेगा। यदि हम समझ बूझकर अच्छे ज्ञान के मार्ग से चलेंगे तो हमारी उन्नति जल्दी होवेगी। एक ईश्वर की चेतना सब रूपों में है। हम लोगों को अज्ञान के कारण अलग २ चेतना मालूम पड़ती है। जब योग द्वारा ज्ञान होता है तब हमको सबकी चेतना एकही है ऐसा ज्ञान होजाता है। इन सब लोकों में हम काम कर सकें और वहाँ का हमको ज्ञान (होश या चेतना)

होते इसलिये उनको ईश्वर ने पांचों के लिये अलग २ शरीर भी दिये हैं। केवल इन शरीरों की पूरी उन्नति नहीं हुई है कि उन लोकों का ठीक २ ज्ञान ठीक प्रकार से प्राप्त कर सकें। वे शरीर ये हैं:—

१—स्थूल या अन्नमय ...स्थूल जगत् के लिये।
२—ईथर का शरीर
३—सूक्ष्म शरीर.....सूक्ष्म या भुवर्लोक के लिये
४—मनोमय कोष...स्वर्ग के निचले भाग या लोक के लिये।
५—कारण शरीर...स्वर्ग के ऊंचे अरूप भाग लोक के लिये।
६—बुद्धि शरीर...बुद्धिलोक के लिये।
७—आत्मा।

आत्मा, बुद्धि और कारण शरीर मिलकर जीव कहलाता है जो बार २ यहाँ जन्म ग्रहण करता है। जिससे यहाँ उसे अनुभव प्राप्त होय ज्ञान मिले और उसकी उन्नति हो। ईथरमय शरीर

हमारे स्थूल शरीर की छाया है। यह जीवित अवस्था में स्थूल शरीर से नहीं निकलता है। परंतु कभी २ किसी रोगी अवस्था में थोड़ा दूर भी हो जाता है। सूर्य से जो प्राण आते हैं उन्हें लेकर यह शरीर हमारी ज्ञान नाड़ियों को तथा शरीर के और भागों को पुष्ट करता है। स्थूल शरीर जब मर जाता है तब यह उससे निकल पड़ता है और कुछ काल में नष्ट हो जाता है। जो लिंग शरीर * है वह हमारी सब कामनाओं का वासस्थान है इसलिये उसे कामरूप भी कहतेहैं। जब स्थूल इंद्रियों के ज्ञानतंतु और ईथरमय शरीर द्वारा बाह्यज्ञान इस शरीर में पहुंचता है तब हमें स्पर्शादि ज्ञान होता है। आरंभ काल में यह शरीर बादल सा, बिना स्पष्ट आकृति का और मैला सा रहता है। जब जीव की कुछ उन्नति होती है तब वह स्पष्ट, साफ़ और ठीक आकृति का बन जाता है। हम लोगों का प्रायः

---

* एस्ट्रल के लिये यहां लिंग शरीर व्यवहार किया है, वेदान्त वा सांख्य में इस शब्द का अर्थ दूसरा है।

ऐसा ही स्पष्ट और साफ़ लिंग शरीर है। विशेष उन्नति होने पर उसके द्वारा योगी लोग भुवर्लोक में ऐसा कार्य कर सकते हैं और ज्ञान संपादन कर सकते हैं जैसा कि हम अपने स्थूल शरीर में से करते हैं। युगान्तर में मनोमय कोश और उस से ऊँचे कोशों की भी ऐसी ही उन्नति होवेगी। स्थूल, ईथरमय, और लिंग शरीर ये तीन और मनस की एक किरण ये चतुष्टय मिलकर शरीराभिमानी देवदत्त, कृष्णदत्त इत्यादि नाम वाला व्यक्ति भाव वाला प्राणी होता है। और शरीर के नाश होने पर भी यमलोक में कितने ही काल तक यह चतुष्टय जीवित रहता है।

४—मरण।

गत अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य की कई एक उपाधियां या कोश हैं; भू, भुवर् और स्वर्ग लोक में काम करने के लिये, इन लोकों की प्रकृति के बने उसके अलग २ शरीर हैं जिनके नाम स्थूल शरीर और

ईथरमय छाया शरीर भूलोक में काम करने वाले, लिंग शरीर भुवर्लोक में काम करने वाला, और मन शरीर या मनोमय कोश और कारण शरीर मानसिक लोक में काम करने वाले हैं। साधारण मनुष्य का केवल स्थूल शरीर ही अभी तक काम करने के लायक़ बना है। समय पाकर दूसरे शरीर भी ऐसे बन जावेंगे। कोई २ योगाभ्यासियों के ये शरीर अभी भी पूरे बन गये हैं। और वे जाग्रत अवस्था में भी भुवर्लोक का तथा मानसिक लोक का, जिसे स्वर्ग लोक भी कहते हैं, पूरा २ हाल जान सकते हैं।

मरने पर जीवात्मा स्थूल शरीर में से निकल जाता है और निकलने के समय उस जन्म का पूर्ण कृत्य नाटक के समान उसकी अंतर्दृष्टि के सामने से निकलता है। तब फिर शांत, आराम वाली, आधी निद्रा कीसी अवस्था आती है। यदि शव के पास बहुत शोक किया जावे या मरने वाले के चित्त में कोई चिंता रहे तो इस शांत अवस्था में बाधा पड़ती

है। कुछ दिनों में ईथरमय छाया शरीर का भी त्याग होता है और वह धीरे २ नाश को प्राप्त होता है। यदि दाहक्रिया हो तो यह शरीर जल्दी नष्ट होता है और इस लिये दाह क्रिया करना अच्छी बात है। पूर्व में हम देख आये हैं कि हर एक लोक या खंड में वहां की प्रकृति की सात अंतर्भूमिका या अवस्था हैं। जीवन काल में मनुष्य के लिंग शरीर में भुवर्लोक की सातों अंतर्भूमिकाओं की प्रकृति मिली हुई रहती है। मरने पर वह अलग २ होकर सब से अधिक स्थूल बाहर, फिर उससे सूक्ष्म उसके भीतर, इस प्रकार उत्तरोत्तर एक २ से अधिक सूक्ष्म भीतर भीतर, रहती हैं। जिस अंतर्भूमिका की प्रकृति सब से बाहर होगी उसी भूमिका का ज्ञान उस प्रेत को होगा और उस प्रकृति के क्षय होने तक उसका उसी अंतर्भूमिका में निवास रहेगा। आज कल प्रायः प्रत्येक जीव को भुवर्लोक में कुछ काल पर्यंत वास करना पड़ता है और वहाँ का वास मनुष्य की प्रकृति के अनुसार बड़ा दुखदाई या कुछ आनंद-

दायक रहता है। जो मनुष्य बहुत विषय वासना में लगे रहते हैं उनको यहां अधिक ठहरना पड़ता है। क्रूर प्रकृति वाले को नीची अंतर्भूमिकाओं में ठहरना पड़ता है और उन्हें वहां का अनुभव भी बहुत स्पष्ट होता है जिससे वे दुःख पाते हैं। अच्छे विद्यावान् को नीची भूमिकाओं का ज्ञान नहीं होता और इसलिए वहां उसे अधिक दुःख भी नहीं उठाना पड़ता।

इसी लोक को यमपुरी वा उसके विशेष भागों को प्रेतलोक और पितृलोक भी कहते हैं। जो सब से नीची भूमिका है उसको नरक कहना योग्य है। यहां पर इस जगत् के सब से बुरे पदार्थों की छाया रहती है और यदि कोई योगी पुरुष यहां कार्यवश जावे तो उसे ऐसा भान होता है कि जैसा किसी को काली डामर सरीखी लसदार वस्तु के भीतर ही भीतर बाट बना २ कर चलना पड़ता हो। यहां अतिशय विषयी, मद्यपानी, मनुष्यघातक, और जो दुनिया में पाप करके आत्मघात कर लेते हैं ऐसे

लोगों का निवास रहता है। ऐसे लोगों की वृत्ति दुनिया की तरफ़ रहती है और ये अपने सरीखे जो दूसरे जीवित पुरुष हैं उनके शरीरों में आवेश करने की चेष्टा करते हैं जिसमें उनको उन शरीरों में आकर विषय सुख भोगने को मिले। साधारण लोग इस खंड में प्रायः नहीं ठहरते। मरणान्तर वे इस में से शीघ्र ही निकल जाते हैं और उन्हें इसका ज्ञान या चैतना नहीं होती। इसके आगे अगली तीन अंतर्भूमिका प्रायः एक से स्वभाव की हैं। उनका दृश्य भी इसी लोक के समान है और जो प्रेत यहां जाते हैं उनका जीवन भी इस दुनिया सरीखा है। यहां तक कि इन मरने वालों को कभी २ यह भ्रम बना रहता है कि हम मर गये हैं या नहीं। अकसर करके सब संसार-रत और स्वार्थी लोगों को यहां ठहरना पड़ता है। दुनिया के मनुष्यों का विशेष भाग प्रायः यहां थोड़े बहुत काल के लिये निवास करता है। जिन मनुष्यों के विचार संसार की स्थूल बातों से हट गये हैं वे शीघ्र ही इन खंडों से

निकल कर ऊपर की तीन अंतर्भूमिकाओं में पहुंच जाते हैं। पंचम अंतर्भूमिका में प्रेत लोगों के दुनियादारी के विचारों के कारण वहां भी यहां सरीखे नगर, घर, वा समाज बन जाते हैं और लाग सुख से रहते हैं। परंतु यह जीवन आख़िर दुनियादारी का है। इसके आगे ६ वें खंड में जिन्हें आत्मज्ञान बिलकुल नहीं है ऐसे स्वार्थ की इच्छा करने वाले मोटे धर्म वालों का स्थूल स्वर्ग है। सातवीं भूमिका में ऐसे स्वार्थी और अभिमानी बुद्धिमान् लोग रहते हैं जिन्हें दूसरों की भलाई की कोई फिकर नहीं परंतु जो विद्या बृद्धि केवल अपने अभिमान या अहंकार के लिये करते हैं।

अच्छे विचार वाला या धर्म विचार वाला मनुष्य, या जो दूसरों की भलाई करता रहा हो, ऐसा मनुष्य, भुवर्लोक से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है क्योंकि जीवित काल में बुरी वासनाओं का संयम रहने के कारण उसके लिंग शरीर का स्थूलभाग कठोर नहीं होने पाया। उस लिंग शरीर के त्याग होने पर ऐसा

मनुष्य शीघ्र ही स्वर्ग को पहुंचता है जहां माया कम रहती है और प्रत्येक प्रकार का ज्ञान केवल उसके विचार करने से ही मिल जाता है। स्वर्ग में सर्वत्र पूर्ण सुख का भान होता है। किसी प्रकार के दुःख या अशांति का वहां रहना असंभव बात है। जो सुख मिलता है उसका वर्णन करना यहां असंभव है। उस सुख को हम लोग इस पृथ्वी पर समझ ही नहीं सकते।

भुवर्लोक में भी प्रत्येक मनुष्य को पूरी २ चेतना नहीं आती। बहुत से लोग अपने विचार रूपों का पिंजरा सा बना कर उसमें बंद रहते हैं और उस लोक का पूरा २ हाल नहीं जानने पाते। इसी प्रकार स्वर्ग का भी पूर्ण ज्ञान सब को नहीं होता परंतु जिसको जितनी सामर्थ्य है वह उतना सुख भोगता है। यहां का सुख भोगने के लिये किसी प्रकार मनुष्य को निःस्वार्थी रहना अवश्य है। और आज कल साधारण मनुष्यों में इतनी निःस्वार्थता आ गई है कि उनका निवास

स्वर्ग में कई सौ वर्ष तक रहता है। सत्य प्रेम या सत्य धर्मपरायणता या सत्य परार्थता जिन में किसी स्वार्थ की इच्छा न हो ऐसे गुणों द्वारा ही मनुष्य स्वर्ग को जाता है। इस लोक में भी सात अंतर्भूमिका हैं जैसी भू और भुवर्लोक के विषय में वर्णन कर आये हैं। उनमें से नीची चार का विचार प्रथम करेंगे। निःस्वार्थ कुटुम्ब प्रीति या मित्र स्नेह के कारण जीव सब से नीचे खंड या विभाग को प्राप्त होता है। इस जीव की योग्यता थोड़ी है। परंतु तोभी उसकी सामर्थ्यानुसार उसे पूर्ण सुख मिलता है। जितने उसके इष्ट मित्र थे वे सब यहां उसके साथ रहते हैं और उनसे उसे निर्विघ्न सुख मिलता है। वास्तव में उनकी संगति एक प्रकार रहती है और इस स्वर्ग वासी जीव को उनकी संगति का मिथ्या भान नहीं होता। स्वर्ग वासी के विचार से उसके इष्ट मित्रों की मूर्तियां बन जाती हैं जिसमें उन इष्ट मित्रों का आत्मा उनकी उन्नति अनुसार अपना भाग भर देता है और इस प्रकार दोनों के बीच में

सत्य प्रेमप्रवाह होता रहता है। इस रीति से हमको उन इष्ट मित्रों का उतना पूर्ण ज्ञान होता है जितना इस पृथ्वी पर मिलना संभव नहीं है। दूसरे ऊंचे विभाग में जाने के लिये सच्ची भक्ति होना चाहिये। इस दशा में वह भक्ति विना ज्ञान की और विना विवेक की रहती है। जैसे कि बहुत से साधारण लोगों की होती है। यहां प्रत्येक धर्म के देवपूजक रहते हैं और उनमें इस गुण के साथ प्रथम भूमिका का प्रेम गुण भी यहां रहता है। भुवर्लोक में तो जीव को प्रत्येक अंतर्भूमिका में थोड़ा बहुत वास करना पड़ता था परन्तु यहां पर मनुष्य नीची भूमिकाओं के गुण जितने अधिक ऊंचे विभाग में वह मनुष्य जा सके, उस में ले जाता है और सब का इकट्ठा उपयोग वहीं करता है। तीसरे विभाग में वे लोग रहते हैं जो मनुष्य जाति भर के उपकारार्थ चेष्टा करते हैं और मनुष्यजाति के हित के उपाय सोचते हैं; कोई २ चित्रकार, मूर्तिकार, और गाने-वाले, और कोई २ सच्चे धर्मोपदेशक यहां वास

करते हैं। चतुर्थ स्वर्ग के वासी कुछ कम रहते हैं परंतु ये कई प्रकार के होते हैं। मनुष्य के लिये जो उत्साहपूर्वक सहायता की चेष्टा करते हैं और जो बड़े ऊंचे आचरण के होने का और उत्तम बुद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, ऐसे लोग इस स्वर्ग में वास करते हैं। वे लोग जो आत्मज्ञान को ढूंढ़ते थे कि ढूंढ़ कर मनुष्य की उन्नति करें वे यहां यथाशक्ति आत्मज्ञान पा रहे हैं। सत्य दर्शन और पदार्थ शास्त्री जो अपनी बुद्धि मनुष्य के हितार्थ उपाय सोचने में ख़र्च करते थे, वे भी यहां आते हैं और उन्नति करते हैं। बड़े २ संगीत शास्त्री, चित्रकार और मूर्तिकार, जो मनुष्य जाति की उन्नति के अर्थ अपनी बुद्धि ख़र्च करना चाहते थे वे भी यहां आकर अपनी २ उन्नति में लगे हैं। और ऐसे लोग भी हैं जो मनुष्य जाति ही की सेवा में अपना पुरुषार्थ ख़र्च करते थे। ये सब जब पुनर्जन्म धारण करेंगे तब यहां पृथ्वी पर बहुत अधिक योग्यता के साथ अपने २ कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। यह याद रखना चाहिये कि जो

जितनी निःस्वार्थता और परार्थता और मनुष्यसेवा की चेष्टा करेगा उसकी उतनी ही उन्नति होवेगी। निःस्वार्थता और परार्थता का प्रयोग घर के भीतर बाहर सब जगह करना चाहिये।

साधारण नियमानुसार इनसे ऊंची तीन भूमिकाओं में से किसी एकमें सब मनुष्यों को यथोचित कालके लिये जाना पड़ता है। जब एक जीवन का सार स्वर्ग में आकर कारण शरीर वासी जीव को पूर्ण रीति से प्राप्त हो चुकता है और सब अनुभव का ज्ञान कारण शरीर में प्रवेश हो चुकता है तब इस संसार के जीवन की तृष्णा जग उठती है और जीव फिर इस लोक में लौट आता है। बहुत से जीव स्वर्ग लोक की पंचम भूमिका में आकर थोड़े ही काल तक वास करते हैं। उनका कारण शरीर इस खंड में रहता है परंतु उनकी अभी इतनी उन्नति नहीं हुई कि उन्हें यहां की पूरी चेतना, या भान होवे। छठवीं भूमिका में केवल ऐसे जीव जाते हैं जो समझ बूझ कर अपनी आत्मोन्नति के लिये चेष्टा करते हैं। सब से ऊंची भूमिका में केवल महात्मा ऋषि और उनके

दीक्षित शिष्य रहते हैं। यहाँ पूर्व जन्मों का स्मरण हो जाता है। यहां से इस भूलोक पर उन आत्मिक बलों की वर्षा होती है जिन से मनुष्य के विचारों की उन्नति होती है और जो और ऊंचे लोकों से इस स्वर्ग लोक में प्रवेश करते हैं।

५—पुनर्जन्म ।

हम पूर्व में देख चुके हैं कि मनुष्य के स्थूल शरीर, ईथरमय शरीर, और लिंग शरीर एक एक के पश्चात् नाश को प्राप्त होते हैं। और एक शरीर के छूटने पर ऊपर के शरीर में चेतना जाग्रत होती है। हम यह भी देख आये हैं कि मनोमय कोश में गत जीवन का कुछ भाग रहता है और स्वर्ग में उस पर क्रिया होती है और उस जीवन का सार कारण-शरीर में प्रवेश करता है। इसी कारण-शरीर में बार बार जन्म ग्रहण करने वाला जीवात्मा रहता है। इस प्रकार अधम काम युक्त मन उच्च मन की एक किरण

है जो नीचे के लोकों में कार्य करने के लिये भेजी जाती है। इसके आस पास भुवर्लोक की तथा स्थूल लोक की प्रकृति जमा हो जाने से स्थूल, ईथरमय, और लिंग शरीर बन जाते हैं और उनके द्वारा नीचा मन नीचे लोकों में काम कर सकता है और अनुभव प्राप्त कर सकता है। यही अनुभव जीवात्मा में जमा होता जाता है। किसी २ अनुभव से तुरंत ही सीधी रीति से लाभ पहुंचता है। ये अनुभव निःस्वार्थता, परोपकार, और सदाचार संबंधी हैं। किसी २ से टेढ़ी रीति से लाभ होता है। ये कामनाएं लिंग शरीर-संबंधी काम, क्रोध, लोभ, मोहादि की हैं। इनके द्वारा जीवात्मा दुःख उठा कर उनसे यह सीखता है कि ऐसे अनुभवों का परिणाम दुःख है, और इसलिये इन कुवासनाओं का त्याग करना चाहिये। उन्नति होते २ मनुष्य के जीवात्मा में इतना ज्ञान हो जाता है कि उस का अन्तःकरण उसे सदैव चेतावनी देकर पापकर्मों से बचाता रहता है। ऐसी अवस्था में अधम वासना मनुष्य की दासी बन जाती है और पाप की ओर नहीं खींचती।

विकास क्रम के जिस पद पर हम लोग ऊंची मनुष्य जाति वाले अभी आरूढ़ हैं उसमें अधम और उच्च मन में थोड़ी बहुत लड़ाई सी बनी रहती है और इस जगत् में जैसा जीवन रहा होगा वैसा ही अनुभव मरने के पश्चात् होवेगा। नीच मन, मानो, एक हाथ से जीवात्मा को पकड़े है और दूसरे से लिंग शरीर की बुरी वासना को; और दोनों उसे अपनी २ तरफ़ खींचते हैं। इस खींचा-तानी में अधम मन का कुछ भाग लिंग शरीर में अटक जाता है और भुवर्लोक में यह मनयुक्त लिंगशरीर छायावत् भटकता फिरता है। भटकते २ अधम मन का भाग अपने लोक की प्रकृति में लय हो जाता है। तब लिंग शरीर भी भुवर्लोक की प्रकृति में धीरे २ लय हो जाता है। यहां एक बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि आत्मा, बुद्धि और कारण शरीर मिल कर जीवात्मा है जो बार २ जन्म लेकर शरीर धारण करता है। उसमें अहंभाव रहता है। बाक़ी नीचे के

जो चार शरीर हैं वे प्रत्येक जन्म के लिए नये बनते हैं। उनमें शरीर भाव, व्यक्तिभाव, या यह भान रहता है कि हम कृष्णदत्त या रामनाथ ऐसे नाम वाले हैं। जैसा २ ज्ञान बढ़ता जाता है वैसे २ स्थूल शरीर से लिंग शरीर में, फिर वहां से मनोमय कोश में और फिर कारण शरीर में चेतना चढ़ती जाती है। पूर्व जन्मों की खबर कारण शरीर में चेतना चढ़ाने से होती है। यह भी हमें याद रखना चाहिये कि पुरुष और प्रकृति आदि अंत रहित हैं। दोनों के संयोग से जगत् प्रगट होता है। चेतना एक है। भिन्न २ रूपों में प्रगट होने से भिन्न २ चेतना हैं ऐसा भान होता है। जब चेतना कारण शरीर में रहती है तब उसे जीवात्मा कहते हैं। यह आत्मा बुद्धि और उच्च मन मिल कर जीवात्मा बनता है। पूर्व काल में पुनर्जन्म के विषय में सब बड़े २ देश जैसे ग्रीस, रोम, मिसरदेश इत्यादि में विश्वास था। बौद्ध और हिन्दू धर्म वाले अब भी उसे मानते हैं। उस के मानने से मनुष्य को संतोष और सुख मिलता है और यह भी दिख पड़ता है कि

इस जगत् में केवल न्याय है। यह भी मालूम होने लगता है कि कर्म द्वारा जो कुछ मिलता है उससे चाहे सुख मिले चाहे दुःख मिले वह उस जोव की उन्नति के लिये अति आवश्यक और श्रेष्ठ है। जैसी चेष्टा पूर्वजन्म में हमने की थी उसके अनुसार हमारा यह जन्म हुआ है। जो २ गुण प्राप्त करने के लिये चेष्टा की थी वे सब गुण प्रयत्न के अनुसार हमको अभी मिले हैं। अब जिन २ अनुभवों की हम को आवश्यकता है वे ही अनुभव हम को इस जन्म में मिलेंगे। हमारे अज्ञान के कारण हम को वे सुख देने वाले या दुःख देने वाले मालूम पड़ें परंतु जैसे माता अपने बालक के लिये हित विचार कर मीठी या कड़वी दवाई आवश्यकतानुसार देती है वैसे ही ईश्वर भी हमारे ऊपर अतिशय दयालु होकर हमारे हित के लिये प्रारब्धानुसार अपने कर्माधिकारी देवों के द्वारा हम को आवश्यक सुख दुःख का ज्ञान कराता है। ऐसे विचार से जोव को परम संतोष होता है।

६—कर्म ।

इस जगत् में सर्वत्र नियम व्यापक है। प्रत्येक कार्य के लिये कारण होता है। यह नियम जैसा इस भूर्लोक में वैसा ही भुवर्लोक और स्वर्ग में भी जारी है। इस नियम को कर्म का नियम कहते हैं। यह सर्व ब्रह्मांड में व्याप्त है और इससे कोई छूटा नहीं है। चाहे वह बहुत ऊंचा हो या चाहे बहुत नीचा हो। इस नियम का एक विभाग मनुष्य से संबंध रखता है जिससे वह भू, भुवर और स्वर्ग लोक में आवागमन करता है। मनुष्य, विचार इच्छा और कर्म करता है। कर्म के तीन साधारण नियम हैं—प्रथम नियम यह है कि जैसे हमारे विचार रहेंगे वैसा ही हमारा स्वभाव हो जावेगा। एक जीवन काल में भी इन को इस का असर यहां तक दिख पड़ता है कि क्रोधी या चिड़-चिड़े मनुष्य या शांत मनुष्य के चिहरे पर उसके स्वभाव के चिह्न दिखने लगते हैं।

स्वर्ग में सब अच्छे विचारों का फल हमारे स्वभाव में समाता है और स्वभाव अच्छा बनता है। इसलिये जैसी वस्तु का हम विचार करते रहेंगे वैसी ही हमारी प्रकृति भी हो जावेगी। यह मन भूमिका या मन लोक संबंधी कार्य हुआ।

दूसरा नियम यह है कि जैसी हमारी इच्छा रहेगी वैसा ही फल हम को मिलेगा। जिन के साथ हम को प्रेम होगा अथवा द्वेष या घृणा होगी उन्हीं का साथ फिर हम को आगे मिलेगा। इस लिये किसी वस्तु की चाह करने में खूब सोच लेना चाहिये कि वह वस्तु चाहने योग्य है या नहीं।

तीसरा नियम यह है कि जैसा सुख या दुखकारी स्थूल कर्म इस शरीर द्वारा हम करेंगे उसी के अनुसार सुख या दुःख की देने वाली हमारी दशा आगे के किसी जन्म में होवेगी। यहां पर यह याद रखना चाहिये कि नियत या प्रयोजन का असर मन पर होता है। यदि कोई मनुष्य अच्छे प्रयोजन से कोई ऐसा कर्म करे जिससे दूसरे को दुःख पहुंचे,

तो उस कर्म का फल यह होवेगा कि उस मनुष्य के शरीर को तो दुःख मिलेगा परंतु अच्छी नियत का परिणाम उसके मन को सुख पहुंचावेगा और उसे उस दुःख पहुंचाने वाली अवस्था से दुःख न होवेगा। यह भी याद रखना चाहिये कि सुखकारी या दुखकारी अवस्था जो कुछ कर्म द्वारा किसी को मिले वह उसके लिये उत्तम है। क्योंकि कर्माधिकारी देवता हमारा हित चिंतन कर जो कुछ अनुभव हमारे लिये उत्तम और हितकारी समझते हैं वही हम को देते हैं।

एक साधारण नियम यह भी है कि कोई भी बल या शक्ति उसी लोक से संबंध रखती है जिसमें वह उत्पन्न हुई हो। यदि स्थूल पदार्थ पाने की इच्छा से कोई शक्ति ख़र्च करे तो उस के फल और कार्य इसी स्थूल लोक में रह जाते हैं और जीव को इस लोक से बांधते हैं। यदि स्वर्ग फल की इच्छा से कर्म किया जावे तो वह कर्म जीव को स्वर्ग से बांधता है। यदि कर्म ईश्वरार्पण करके किया जावे

तो उसका फल अधिक ऊंचे लोकों में होने के कारण जीव को बंधन में नहीं डालता। जितने अधिक ऊंचे लोक का कर्म होवेगा, उतना ही अधिक बलवान् उसका फल होवेगा। हमारे विचार करने पर हमारे मनोमय काष में से कुछ भाग निकल एक मूर्ति बन कर थोड़ी देर तक वह मूर्ति बाहर रहती है और फिर पीछे से लय हो जाती है। यदि कोई दूसरा मनुष्य हमारे सरीखे विचार वाला हो तो वह मूर्ति उस के मनोमय कोष में प्रवेश कर उसके मन में हमारे सरीखे विचार उत्पन्न करेगी। हलके विचारों से ऐसा लिंग शरीर में भी होता है। यदि हम किसी पर क्रोध करेंगे तो हमारे लिंग शरीर में से एस्ट्रल प्रकृतिका छोटासा भाला सा बनकर जिस पर क्रोध किया है उसको नुक़सान पहुंचाने की चेष्टा करेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि कोई भी बुरा विचार या बुरी इच्छा हम अपने शरीर में न आने देवें। क्योंकि यदि हमारा बुरा विचार दूसरे के मन में प्रवेश करेगा तो हम को उस कर्म का फल भोगना पड़ेगा।

कर्म तीन प्रकार का होता है १ प्रारब्ध, २ संचित, और ३ क्रियमाण।

पूर्वजन्मों में हमने बहुत सा कर्म किया है उस सब का विपाक या फल एक साथ नहीं हो सकता क्योंकि जिनके द्वारा उसका विपाक या फल मिलता है वे सब अपने साथ एकही स्थान में इकट्ठे जन्म नहीं ले सकते। किसी कर्म भोग के लिये एक प्रकार की अवस्था चाहिये किसी के लिये दूसरे प्रकार की। इसलिये स्वर्ग त्यागने के समय कर्माधिकारी देवता अपने पूर्ण ज्ञान से देख लेते हैं कि हम कितना कर्म भोग सकेंगे, और उतनाहीं प्रारब्ध नियत कर उसके लायक देश, कुल, और समाज में हमारा जन्म कराते हैं। यही कर्म प्रारब्ध कहलाता है। इसके सिवाय जो कर्म आगे भोगने के लिए बाक़ी रह जाता है उसे संचित (जमा किया हुआ) कहते हैं। इस का असर हमारे स्वभाव पर अब भी पड़ता है। फिर जो नया कर्म हम करते जाते हैं उसे क्रियमाण कहते हैं। भीष्मपितामह जब

बाणशय्या पर पड़े हुए थे तब उनसे यह प्रश्न किया गया था कि प्रारब्ध बलवान् है या पुरुषार्थ ? उन्होंने समझा कर यह बताया कि पुरुपार्थ बलवान् है। और प्रारब्ध केवल पिछले पुरुपार्थ ही का नाम है। कोई २ प्रारब्ध हमारे पुरुपार्थ से टल जाता है। कोई २ इतना बलवान् रहता है कि हमारा पुरुषार्थ उसको टालने को समर्थ नहीं होता। मार्कंडेय ऋषि का प्रारब्ध १२ वर्ष की आयु का था परंतु उनने अपने विशाल पुरुपार्थ से दीर्घ आयु प्राप्त कर ली।

यदि तराज़ू के एक पल्ले में १०० मन का बोझा है और दूसरा ख़ाली है तो दूसरे में जब तक हम १०० मन का बोझा न रक्खें तब तक पहिला न उठेगा। यह कठिन बात है। परंतु प्रत्येक विषय में हमारा प्रारब्ध इतना बलवान् नहीं रहता। किसी २ विषय में उसकी अवस्था ऐसी रहती है जैसे उस तराज़ की, जिसके दोनों पल्ले में प्रायः एक वज़न का या कुछ थोड़ा घट बढ़ बोझा रक्खा है।

ऐसी अवस्था में पुरुषार्थ का थोड़ा सा बोझा डालने से कर्म तराज़ू की डंडी बदल जायगी। इसलिये यह याद रखना चाहिये कि प्रारब्ध कितना ही बलवान् क्यों न होवे हमारे पुरुषार्थ से उसमें कुछ न कुछ फ़र्क अवश्य पड़ेगा और यह विचार कर हम को पुरुषार्थ कभी नहीं त्यागना चाहिये। पुरुषार्थ करने में हम ईश्वरीय नियम के साथ ही साथ जाते हैं न कि उसके विपरीत। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि यदि हम प्रतिदिन सर्व त्रैलोक्य को आशीर्वाद देते रहें और उनका मंगल मनाते रहें तो हमारे बहुत से बुरे कर्म का क्षय हो जायगा। यह नियम सब को पालनीय है। कर्म फल की इच्छा त्याग कर केवल कर्तव्य धर्म पालने की इच्छा से जब हम कर्म करते हैं अर्थात् जब हमारा कर्म निष्काम हो जाता है तब वह जीव को बंधन में नहीं डालता और जीव फिर आवा-गमन रूपी बंधन से मुक्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में जीव दूसरे सब जीवों को अपने आत्मा में देखने लगता है और उसकी द्वैतबुद्धि नाश हो जाती

है । याने 'मेरा' 'तेरा' इत्यादि का भ्रम दूर हो जाता है ।

७—मनुष्य का भविष्य ।

पूर्व में हम देख आये हैं कि सर्व जीव एक ईश्वर से निकलते हैं और वास्तव में वे एक ईश्वर का इतने शरीरों में प्रकाश मात्र हैं । ईश्वर से निकलकर जीव माया में अधिक और अधिक लिप्त होकर अतिशय मायायुक्त हो जाता है और तब उसे अतिशय अहंकार होता है । इन शरीर-बंधनों के कारण संवेदना (होश=चेतना) का स्थायी केन्द्र नियत हो जाता है और स्वसंवेदना* प्रथम स्थूल उपाधियों में और पीछे से ऊंची उपाधियों में प्रगट होकर अंत में जीव सर्व उपाधियों में स्वचेतना या स्वसंवेदना युक्त हो जाता है । विकास

---

* अर्थात् "हम हैं" ऐसा ज्ञान, इसे अंतबोध या निजबोध भी कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसको Self—conscious ness कहते हैं।

है। प्रथम अवस्था को कोई भी निःस्वार्थी पुरुष प्राप्त करने की चेष्टा कर सकता है। ऐसे मनुष्य को पूर्वजन्म में यह अनुभव हो चुका होगा कि सर्व एकमय है और इस जगत् में ईश्वर को छोड़ और किसी पदार्थ से मनुष्य को नित्य सुख नहीं मिल सकता। यह जान कर वह एकत्व की ओर अपने में उत्तम परोपकारी गुण प्रगट करने की, चेष्टा करेगा। जब ऐसा ज्ञान हो जायगा कि मनुष्य के विचारों का असर दूसरे मनुष्यों पर पड़ता है तब वह अपने विचार शुद्ध करने का दृढ़ प्रयत्न करेगा और मन को अपना दास बनावेगा। इस प्रकार उन्नति करता हुआ वह परम पद अथवा विष्णु पद को प्राप्त होवेगा।

वेदान्तानुसार इस अवस्था को प्राप्त होने के लिये आरंभ में साधन चतुष्टय चाहिये। विवेक, वैराग्य, शमादि षट संपत्ति, और मुमुक्षत्व ये उनके नाम हैं। उनका वर्णन इस भांति है:—

ब्रह्मादिक भुवि भोगहिं जेते।
काक विष्ट सम जाने तेते॥

सो निर्मल वैराग्य कहावे ।
रागादिक मल दूर बहावे ॥
नित्य आतमा रूपहि जानो ।
दृश्य सकल विनाशवत् मानो ॥
ऐसो निश्चय होवे जबहीं ।
भयो विवेक जानिये तबहीं ॥
सदा वासना त्याग है जोई ।
शम स्वरूप कहियत हैं सोई ॥
बाह्येन्द्री वृत्ति निग्रह करे ।
दम स्वरूप यह मुनि उच्चरे ॥
विषयन ते मन हटि रह जोई ।
परम उपरति कहावे सोई ॥
सहनो सब दुःखन को जोई ।
सो सुख रूप तितिक्षा होई ॥
श्रुतिगुरुवाक्यविषय विश्वासा ।
ताहि कहिय श्रद्धा सुप्रकाशा ॥
चित को रोकि राखिबो जोई ।
समाधान कहियत हैं सोई ॥

हे हरि यह जगबंधन जोई।
कैसे कब छूटैगो सोई॥
यह दृढ़ बुद्धि भई है जाको।
सो मुमुक्षता कहिये ताको* ॥

सर्व धर्मों में ज्ञान साधन के ये ही ४ उपाय हैं। एक २ साधन पर दीर्घ काल तक मनन करते रहने से तथा उसको व्यवहार में लाने से वह साधन सिद्ध हो जाता है। इस तरह इन चार साधन , सिद्ध होने से जिज्ञासु को आगे का मार्ग स्वयं दिखने लगता है। इनका पूर्णरूप से प्राप्त करने में बहुत काल लग जाता है। इस लिए इस कार्य में नाउम्मेद नहीं होना चाहिये क्योंकि साधारण मनुष्य जिसको कई युगों में प्राप्त होवेंगे उसपद को हम कुछ जन्मों में प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।

---

* संस्कृत श्लोक ये हैं।

ब्रह्मादि स्थावरांतेषु वैराग्यं विषयेष्वनु।
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम् ॥ ४ ॥

नित्यमात्म स्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम् ।
एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै ॥ ५ ॥
सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः ।
निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥
विषयेभ्यः परावृत्तिः परमो परितिर्हि सा ।
सहनं सर्वदुखानां तितिक्षा सा शुभा मता ॥ ७ ॥
निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिश्रद्धेति विश्रुता ।
चित्तैकाग्र्यंतु तल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् ॥ ८ ॥
संसारबंधनिर्मुक्तिः कथं स्यान्मे कदाविधे ।
इति या सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या सा मुमुक्षुता ॥ ९ ॥

(मुंशी नवलकिशोर के अपरोक्षानुभव से)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१५	जा	जो
१५	१०	स्वग	स्वर्ग
१६	२	धारे	धीरे
१९	४	लाग	लोग
,,	१ॱ	फ्रिकर	फ़िकर
२२	१	राति	रीति
,,	५	विना	बिना
२७	१	कम	क्रम
२८	१७	मनुष्यका	मनुष्यको
३३	५	काप	कोप
३४	१५	लए	लिए
,,	१५	काई	कोई
३५	१८	तराज़	तराजू
३७	१७	अंतबोध	अन्तर्बोध
४३	८	तल्लक्ष्ये	सल्लक्ष्ये

छप रही हैं

१—दैवी सहायक लेडबीटर साहिब की अँग्रेज़ी पुस्तक का भाषानुवाद।

२—थियासोफ़ी मार्गदर्शक उड साहिब की अँग्रेज़ी पुस्तक का भाषानुवाद।

३—मुमुक्षु का मार्ग श्रीमती एनी बेसंट की अँग्रेज़ी पुस्तक का भाषानुवाद।